दैनिक जागरण

बुरे वक्त की एक अच्छी बात यह होती है कि वह भी गुजर जाता है

मंदी का मुकाबला

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण भले ही सीधे तौर पर यह मानने से इन्कार कर रही हों कि अर्थव्यवस्था सुस्ती की चपेट में आ गई है, लेकिन यथार्थ यही है कि मंदी ने दस्तक दे दी है। जब आर्थिक विकास दर के आंकड़ों के साथ अर्थव्यवस्था को गति देने में सहायक बनने वाले कई प्रमुख सेक्टर निराशाजनक तस्वीर पेश कर रहे हों तब मंदी की हकीकत को स्वीकार करना ही समझदारी है। अगर मंदी का माहौल नहीं है तो फिर क्या कारण है कि एक साथ कई सेक्टर गिरावट से ग्रस्त हैं? वित्त मंत्री मंदी के पीछे के उन कारणों से असहमत हो सकती हैं जो पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने गिनाए, लेकिन वह इसकी अनदेखी नहीं कर सकतीं कि अर्थव्यवस्था की रफ्तार धीमी पड़ गई है और उसका असर भी दिखने लगा है। इस असर को वह महसूस कर रही हैं, इसका प्रमाण उनका यह कथन है कि वह उद्योग जगत के प्रतिनिधियों से मिल रही हैं और उनकी समस्याएं सुन रही हैं। फिलहाल यह स्पष्ट नहीं कि उद्योग जगत सरकार से क्या चाहता है, लेकिन जरूरी केवल यह नहीं कि उसकी समस्याओं का समाधान हो, बल्कि यह भी है कि सरकार मौजूदा हालात से निपटने के लिए हर संभव उपाय करती हुई दिखे। इससे ही उद्योग जगत के साथ आम आदमी को भरोसा पैदा होगा।

सरकार को इससे परिचित होना चाहिए कि आर्थिक माहौल के निर्माण में भरोसे की एक बड़ी भूमिका होती है। स्पष्ट है कि सरकार को मंदी के कारणों का निवारण करने के साथ ही सकारात्मक माहौल का निर्माण करने के लिए भी सक्रिय होना होगा। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि आसार इसी के अधिक हैं कि चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही के आंकड़े भी जीडीपी में गिरावट के रुख को दर्शाएं। इस गिरावट के सिलसिले से जल्द उबरने के लिए जो भी कदम उठाए जा रहे हैं उनका जमीन पर क्या असर हो रहा है, इसकी सतत निगरानी भी आवश्यक है। वित्त मंत्री की ओर से आर्थिक माहौल को मजबूती देने के लिए हाल में कई कदम उठाए गए हैं और उनकी ओर से यह संकेत दिए गए कि ऐसे ही कदम आगे भी उठाए जाएंगे। बेहतर हो कि ये कदम ऐसे हों जिससे उद्योग जगत कहीं अधिक सक्षम और प्रतिस्पर्धी बन सके। निःसंदेह इसके लिए उद्योग जगत को खुद भी सक्रिय होना होगा। जहां उसे अपने बलबूते आगे बढ़ने की क्षमता अर्जित करनी होगी वहीं सरकार को यह देखना होगा कि इसके लिए अनुकूल माहौल कैसे निर्मित हो? इस क्रम में यह समझना ही होगा कि श्रम कानूनों में बदलाव के साथ अन्य लंबित सुधारों को आगे बढ़ाने और देरी नहीं होनी चाहिए।

स्वस्थ और स्वच्छ बिहार

शराबबंदी के बाद बिहार सरकार ने अब नशा मुक्त बिहार की ओर एक और कदम बढ़ाया है। प्रदेश में 12 तरह के पान मसालों पर रोक लगा दी गई है। यह रोक फिलहाल साल भर के लिए लगाई गई है। शराबबंदी के फैसले का जिस तरह समाज के हर वर्ग ने स्वागत किया था, उसी तरह पान मसाला पर रोक से भी प्रदेश के लोग खुश हैं। दरअसल जिन पान मसालों के नमूने लिए गए थे उनमें मैग्नीशियम कार्बोनेट पाया गया है। इससे एक्यूट हाइपर मैग्नेशिया, कार्डिएक अरेस्ट जैसी कई तरह की गंभीर बीमारियों के होने का खतरा बना रहता है। इसके साथ ही इन पान मसालों के साथ जो तंबाकू मिलाया जाता है उससे मुंह के कैंसर का खतरा भी काफी बढ़ जाता है। देखा गया है कि हाल के वर्षों में इस तरह के मामले काफी बढ़ गए हैं। दरअसल बिहार पान के लिए प्रसिद्ध रहा है। पान यहां की संस्कृति से सीधे जुड़ा हुआ है। मुखशुद्धि के रूप में लोग इसका इस्तेमाल करते रहे थे। इसी प्रवृत्ति को देखते हुए कुछ दशक पहले पान मसाला का प्रचलन शुरू हुआ। बाद में गुटखा के रूप में यह युवाओं को लती बनाने लगा। कम उम्र के कारण किशोर इससे होने वाले नुकसान को नहीं समझ सके और समय के साथ वह आदी होते चले गए। बाद में इसे छोड़ना उनके लिए मुश्किल साबित होने लगा। कई बार मुंह के कैंसर के रूप इसका दुष्परिणाम सामने आया। कम उम्र में कार्डिएक अरेस्ट के मामले सामने आने लगे। स्वास्थ्य संबंधी कई समस्याएं पैदा होने लगीं जिससे सीधे तौर पर वे अंजान रहते हैं। इसका असर उनके घर-परिवार पर पड़ता है। इलाज के रूप में एक भारी-भरकम राशि खर्च करनी पड़ती है। पीड़ित व्यक्ति को जब तक इसका अहसास होता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। ऐसी स्थिति में सरकार का यह कदम समाज को नई दिशा दे सकता है। हालांकि सरकार की यह कोशिश तभी सफल होगी जब इसे सख्ती से लागू किया जाएगा। चेक प्वाइंट पर पूरी सख्ती बरतनी होगी। संभव है, रोक के बाद आस पास के राज्यों से तस्करी बढ़ जाए। लिहाजा सरकार को हर कदम पर नजर रखने की जरूरत है। इसके साथ ही इस फैसले का दूसरा असर स्वच्छता से भी जुड़ा हुआ है। जगह-जगह पान मसाला खाकर थूकने से गंदगी फैलती है। सरकारी दफ्तरों की दीवारों की बदरंग तस्वीरें अक्सर सामने आती रहती हैं। इसके अलावा ट्रेन, बस और अन्य सार्वजनिक जगहों पर इस तरह की गंदगी दिख जाती है। मुमकिन है, अब यह दृश्य नहीं देखने को मिले।

रचनात्मक आलोचना की आवश्यकता

हृदयनारायण दीक्षित

आलोचना सुधार की सूत्रधार है। आलोचना और असहमति के अभाव में लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं। मगर रचनात्मकता से रहित आलोचना भी निरर्थक है

मनुष्य प्रकृति का चिंतनशील प्राणी है। वह प्रतिपल सोचता है। सोच-विचार के नए क्षेत्रों में प्रवेश करता है। चिंतन विवेचन से अंत में प्राप्त निष्कर्ष को सिद्धांत कहा जाता है, लेकिन सिद्धांत निरपेक्ष नहीं होते। सिद्धांत या वाद के प्रतिवाद भी होते हैं। इनकी आलोचना भी होती है। आलोचना निंदा नहीं है। भारतीय चिंतन में आलोचना रचनात्मक गतिविधि है। लोकमंगल की साधना में आलोचना का भी सदुपयोग है। सोचने की भारतीय दृष्टि में कटु आलोचना का भी स्वागत रहा है। कबीर ने निंदक को भी अपने आंगन में आश्रय देने का उपदेश दिया है। आलोचना पूरक और वैकल्पिक विचार भी होती है, लेकिन भारतीय राजनीति में रचनात्मक आलोचना नहीं है। यहां आलोचना का अर्थ व्यक्तिगत आरोप हैं। विपरीत विचार के प्रति आदरभाव नहीं है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक कार्यक्रम में 'रचनात्मक आलोचना के स्वागत व आदर' की बात कही है। भारतीय विवेक में विपरीत विचार का आदर रहा है। मोदी ने ठीक कहा है कि 'सार्वजनिक जीवन में विभिन्न विचारधाराओं वाले व्यक्ति व संगठनों के बीच संवाद होना चाहिए। विपरीत विचारधाराओं को सुनने की सभ्यता शालीनता भी होनी चाहिए।'

सत्य सार्वभौम और सर्वकालिक होता है। भारतीय चिंतन के अनुसार सत्य पर देशकाल का प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए सबके अपने निजी सत्य नहीं हो सकते। सत्य लोकमंगल का अधिष्ठान भी है। वाद, प्रतिवाद, संदेह और संशय सत्य के अंग हैं। इसलिए प्रत्येक विचार आदर योग्य है। संसदीय राजनीति में अनेक मत होते हैं। उनके मध्य सतत संवाद होते रहना चाहिए, लेकिन भारत में प्रेमपूर्ण संवाद का अभाव है। बहस कम है, टकराव ज्यादा है। टकराव भी विचार पर कम है, व्यक्तिगत टकराव का अराजक माहौल है। ऋग्वेद के ऋषि संवाद विज्ञान के प्रथम संस्थापक हैं। कुछेक जल को आदि तत्व मानते थे और कुछ अग्नि को, लेकिन भिन्न विचार के बावजूद वे प्रकृति में विरोधी तत्वों का सहअस्तित्व देखते थे। प्रकाश के साथ अंधकार का सहअस्तित्व आश्चर्यजनक है, लेकिन सत्य यही है कि प्रकाश का घटते जाना अंततः अंधकार है और अंधकार का घटते जाना अंततः प्रकाश है। प्रकृति में विरोधी गुणों का सहअस्तित्व है तो लोकतंत्र में भिन्न विचार वाले सत्तापक्ष और विपक्ष का सहअस्तित्व क्यों नहीं हो सकता?

सहमति और असहमति भारतीय लोकतंत्र के मन की उड़ान के दो पंख हैं। दोनों स्थाई भाव नहीं हैं। दोनों परिवर्तनशील हैं। सहमति को असहमति और असहमति को सहमति बनते देर नहीं लगती। सहमना संवाद जरूरी है। ऋग्वेद के अंतिम सूक्त में साथ-साथ चलने और प्रेमपूर्ण संवाद करने की स्तुति है। इसमें उल्लेख है, 'पूर्वजों ने भी परस्पर संवाद करते हुए सत्कर्म किए थे।' संवादरत रहना भारतीय संस्कृति का मुख्य तत्व है। विचारधाराओं का भिन्न रहना कोई अवगुण नहीं है। मोदी ने ठीक ही कहा कि बहुत लोगों की सोचने की शैली मुझसे भिन्न हो सकती है, लेकिन चिंतनशील लोगों की रचनात्मक आलोचना की मुझे प्रतीक्षा रहती है।' रचनात्मक आलोचना ही राष्ट्र की सिद्धि और समृद्धि में सहायक हो सकती है। रचनात्मक आलोचना राष्ट्र और समाज का ही आत्मोद्घाटन होती है। वह सुस्थापित तथ्यों को और मजबूत करने के नए तथ्य देती है। संदेहों का निवारण करती है और गलती सुधारने का अवसर भी देती है। ऐसी आलोचना वाली असहमति भी सौंदर्यपूर्ण होती है। लोकतंत्र में ऐसी असहमति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत में वाद-विवाद और संवाद की परंपरा बहुत पुरानी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता व दंडनीति का उल्लेख किया है। दर्शन आन्वीक्षिकी है। आन्वीक्षिकी लोक उपकार की विद्या है। त्रयी वेद है। वार्ता का विषय कृषि-पशुपालन है।' बृहस्पति कौटिल्य से बहुत प्राचीन हैं। उनके अनुसार वार्ता और दंडनीति दो विद्याएं प्रमुख थीं। वार्ता का महत्व बताते हैं 'यह विद्या धान्य, पशु, सोना, ताम्र आदि देने वाली उपकारिणी है। इस विद्या से उपार्जित कोष व सेना के बल पर राजा स्वपक्ष व विपक्ष को वश में करता है।' आन्वीक्षिकी की तरह चरक संहिता में 'युक्ति' है। ज्ञान के आधार पर अज्ञात को जानने का प्रयत्न 'युक्ति' है। न्याय सूत्र में संशय संदेह आदि संवाद विषयों का विवेचन है। 'प्रमाण' पर जोर है। फिर विवाद के विषय का ज्ञान व 'संशय' हैं। प्रयोजन, उदाहरण, सिद्धांत और अनुमान के घटक मिलाकर संवाद और आलोचना के मुख्य आठ तत्व हैं। दंडात्मक आलोचना, असत्य भाषण, विषयांतर और आक्षेप आदि की कोई जगह नहीं है। न्याय दर्शन के साथ ही वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत में संवाद के सूत्र हैं। सबका उद्देश्य सत्य और आनंद की प्राप्ति है।

रचनात्मक आलोचना किसी विचार का वैकल्पिक पक्ष होती है। ऐसे आलोचक के मानस का निर्माण आधारभूत सत्यों से होता है। गांधी जी का उदाहरण पर्याप्त है। उन्होंने अंग्रेजी राज की कटु आलोचना की, लेकिन आलोचना में भी सत्यनिष्ठा थी। गांधी जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपशब्द नहीं प्रयोग किए। उन्होंने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए विलियम हंटर की पुस्तक 'इंडियन एंपायर', मैक्समूलर, एचएस मेन, सर टॉमस और पिनकाट आदि यूरोपीय विद्वानों के उद्धरण दिए। सिद्ध किया कि ऐसे महान भारत पर अंग्रेजी राज का कोई औचित्य नहीं। यह अंग्रेजी राज की रचनात्मक आलोचना थी। गांधी जी ने आलोचना और सत्याग्रही आंदोलनों को भी रचनात्मक बनाया था। आलोचना के ऐसे प्रतिमान दुनिया के अन्य देशों में नहीं हैं। आलोचना आक्रमण नहीं होती। आक्रमण में हिंसा होती है, लेकिन आलोचना में सुधार की मांग। निंदा और आलोचना एक नहीं हैं। रचनात्मकता का विकल्प रचनात्मकता ही है।

'आलोचना की भारतीय दृष्टि' रचनाधर्मी है। इसमें वाक् संयम का मधुरस है। बेशक दलतंत्र में सबकी विचारधारा है। असहमति भी स्वाभाविक है, लेकिन यहां विचारधाराओं में संवाद का अभाव है। व्यक्तिगत आरोपों की लत से रचनात्मकता आहत है। संसद और विधानमंडलों की बहस भी प्रायः रचनात्मक नहीं हैं। यहां विधायी कामकाज के निस्तारण की प्रशंसा को उत्पादक कहते हैं, लेकिन इस उत्पादकता में रचनात्मकता के सृजनरस का अभाव है। दुनिया की सबसे प्राचीन संस्कृति वाले भारत में भिन्न विचारों को आदरपूर्वक सुनने की परंपरा घटी है। प्रधानमंत्री ने इसी ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने अपनी रचनात्मक आलोचना की प्रतीक्षा का भी उल्लेख किया है। आलोचना और असहमति के अभाव में लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं। रचनात्मकता से रहित आलोचना कोरा आरोप ही होती है। क्या सभी दल नेता, कार्यकर्ता और सार्वजनिक जीवन के अन्य महानुभाव रचनात्मक आलोचना को बढ़ावा दे सकते हैं?

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

लोक संस्कृति से जुड़े शिक्षा

बद्री नारायण

आधुनिकता अच्छी है, पर उसकी एक सीमा है। हमें पारंपरिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान की महत्ता को भी समझने की दरकार है

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक ने हाल में भारत में शिक्षा को संस्कृति से जोड़ने का आह्वान किया। इस पर लोगों ने तुरंत ही सहमति और असहमति व्यक्त करनी शुरू कर दी। मानव संसाधन विकास मंत्री के इस आह्वान पर हमारी असहमति हो सकती है, किंतु अगर गहराई में जाकर देखा जाए तो शिक्षा एवं संस्कृति के बीच गहरे अंतरसंबंध का हमें भान होगा। शिक्षा को अगर हम ज्ञान, कल्पना शक्ति एवं रचनाशीलता के विकास का माध्यम मानें तो इनके विकास में हर समाज की अपनी संस्कृतियों के प्रगतिशील तत्वों की बड़ी भूमिका होती है। इन संस्कृतियों में कल्पना शक्ति, ज्ञान एवं रचनाशीलता के विकास एवं विस्तार के तत्व छुपे होते हैं। वे समाज जहां उपनिवेशवाद के हमले के बाद भी संस्कृतियां मरी नहीं हैं, वहां संस्कृतियां शिक्षा व्यवस्था में पूरक तत्व का काम तो कर ही सकती हैं। पश्चिमी समाज जिनमें अधिकांश का विकास उपनिवेशवाद से प्राप्त ज्ञान शक्ति, अर्थ शक्ति एवं धर्म शक्ति के कारण हुआ है, उन्होंने पहले अपनी संस्कृतियों को मारा, फिर उन्हें संग्रहालयों में सजाकर रख दिया।

दार्शनिक आनंद कुमार स्वामी का यह अवलोकन मौजूदा बहसों के लिए भी मुफीद है। वहीं दुनिया में ऐसे अनेक समाज हैं जो उपनिवेशवाद से बच गए और ऐसे अनेक समाज हैं जिन्हें उपनिवेशवाद लील गया। वहीं तीसरे प्रकार के समाज हैं जहां उपनिवेशवाद के प्रभाव से उनकी राष्ट्रीय आत्मा में विखंडन तो पैदा हुआ, किंतु अपनी विशिष्टताओं के कारण वहां की संस्कृतियां जीवित रहीं। भारत ऐसा ही समाज है। जहां उपनिवेशवाद ने अंतरविरोध तो सृजित किया, किंतु उसे ग्रस नहीं पाया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एके शरण ठीक ही मानते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने हमारी आत्मा में विखंडन पैदा किया, किंतु उपनिवेशवाद 'भारतीय आत्मा' को निगल नहीं पाया। हालांकि उसने हमारे भीतर एक प्रकार के विस्मरण का भाव पैदा कर दिया। इस विस्मरण के कारण हम अपने समाज की बहुल एवं विविध संस्कृतियों की आंतरिक शक्ति को समझ नहीं पाए। उनमें निहित रचनाशीलता, कल्पनाशीलता एवं ज्ञानकोश हमारे चिंतन एवं चिंता से दूर ही रहे। हमने अपनी संस्कृतियों को पिछड़ेपन का प्रतीक माना एवं उनमें निहित 'देशज आधुनिकता' के तत्वों को समझने से इन्कार किया। उपनिवेशवाद ने हमारी मानसिकता को इस कदर बदल दिया कि हम अपने प्रति ही हीनभावना से भर गए हैं।

भारतीय आधुनिकता की जो परिकल्पना हमने की वह बहुत कुछ औपनिवेशिक आधुनिकता के मानकों पर आधारित थी। हमने यह सोचा भी नहीं कि अंग्रेजों के आने के पहले तक भारतीय समाज कैसे चला, क्या उसमें आधुनिकता के तत्व नहीं थे, क्या उसमें प्रगतिशील, ऊर्जावान एवं भविष्य को रचने वाले कुछ भी तत्व नहीं थे? हमने अपने औपनिवेशिक पूर्व के अतीत को नकारा ही नहीं, कई बार उसे अंधकार का युग माना। हमने यह नहीं सोचा कि उसी समाज ने शंकराचार्य, वैदिक, बौद्ध ज्ञानियों से लेकर कबीर, रैदास, नानक, बुल्लेशाह जैसे ज्ञानियों को पैदा किया। वे वैचारिक वाद-विवाद, संवाद करते हुए भारतीय ज्ञान लोक को रचते रहे। उसी युग ने एक बेहतर भू-व्यवस्था एवं पर्यावरणीय सहअस्तित्व को स्थापित कर रखा था। उसी समाज ने एक 'समग्र जीवन' की परिकल्पना हमें दी। उसी ने हममें संतोष, परित्याग, लालच से मुक्ति के भाव पैदा किए।

जाहिर है कि हम उपनिवेशवाद द्वारा पैदा किए हुए विस्मृतिकरण का शिकार तो हुए ही, साथ ही उसी की देन आत्मग्लानि, आत्मधिक्कार के बोध से भी भरे रहे। फलतः हम अपने समाजों की लोक संस्कृतियों से भी कटे रहे, जो रचनात्मक ऊर्जा की अक्षुण्ण स्रोत रही हैं। हालांकि उनके कुछ रूपों को हमने अपने मनोरंजन के लिए इस्तेमाल तो किया, किंतु उन्हें अपने पारंपरिक ज्ञानकोश के रूप में नहीं देखा। अफ्रीकी साहित्यकारों एवं चिंतकों ने औपनिवेशिक दमनग्रस्तता की पड़ताल करते हुए ऐसा ही कुछ अपने समाजों में भी पाया। केन्या के साहित्यकार अंगुमी वाश्योगों ने अपनी पुस्तक 'डिकॉलोनाइजिंग माइंड' में अपनी संस्कृति, चिंतन एवं साहित्य के संदर्भ में औपनिवेशिक संकटग्रस्तता की चर्चा करते हुए आत्म भाषा एवं अपने समाज की संस्कृति को उपनिवेशवादी मानसिकता से निजात पाने के लिए 'हथियार' के रूप में इस्तेमाल करने की कोशिश की है। भारतीय संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन, एके सरन और वासुदेव शरण जैसे ज्ञानी ऐसे ही प्रयास करते रहे हैं। हमारी शिक्षा को भी क्या उपनिवेशी प्रभाव से मुक्त करने की जरूरत नहीं है? निश्चित रूप से आज इसकी आवश्यकता है। इसे औपनिवेशिक छाया से बाहर निकालने में हमारे समाज की बहुल संस्कृतियां एवं उनमें निहित लोक विवेक एक 'हथियार' का काम कर सकते हैं। भारत में आधुनिक शिक्षा सबकी जरूरत है। किंतु सांस्कृतिक विवेक से आधुनिक शिक्षा को जोड़ने के दो लाभ हो सकते हैं। एक तो आधुनिकता से लाभ हम उठा ही पाएंगे, साथ ही आधुनिकता से पैदा होने वाली संकटग्रस्तता को भी हम इसके माध्यम से कम कर सकते हैं। दूसरे, सांस्कृतिक ज्ञानकोश हमारे लिए आधुनिक ज्ञान के पूरक का काम भी कर सकता है।

सांस्कृतिक ज्ञानकोश मूल्यबोध, विवेक दृष्टि का कोश होता है। आधुनिकता हमारी शक्ति है, परंतु इसकी अनेक सीमाएं भी होती हैं। पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक ज्ञान इसकी सीमाओं को कम करने में हमारी मदद कर सकते हैं। अनेक भारतीय संस्थाएं जैसे जे कृष्णामूर्ति से जुड़े शिक्षा संस्थान, श्री अरबिंदो से जुड़े संस्थान, विवेकानंद केंद्र इत्यादि भारतीय संस्कृति की सृजनात्मकता को अपनी शिक्षा पद्धति से बहुत अच्छी तरह से जोड़ रहे हैं। कबीर, रविदास, स्वामी शिवनारायण जैसे पंथों से जुड़े शिक्षा संस्थान भी संस्कृति एवं शिक्षा को जोड़ने का काम कर रहे हैं। जरूरत है वैकल्पिक शिक्षा पद्धति एवं मुख्य शिक्षा पद्धति भी समाज के विविध सामाजिक समुदायों में संचित लोकज्ञान को अपनी शिक्षा पद्धति में महत्व दे और शिक्षा लोक में सामाजिक समुदायों की सांस्कृतिक मुखरता को जगह दे। तभी हम अपने लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित कर सकते हैं जो आधुनिकता से उपजी संकटग्रस्तता से हमें मुक्त कर सकती है।

(लेखक प्रयागराज स्थित गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

प्रार्थना

सभी लोग किसी-न-किसी रूप में प्रार्थना करते हैं, परंतु बहुत कम लोग प्रार्थना के प्रभाव या महत्व को जानते हैं। प्रार्थना क्या है? जब हम अपने आप कुछ करने में असमर्थ होते हैं तो किसी परम शक्ति का आह्वान करते हैं और इसके लिए प्रार्थना ही माध्यम है। प्रार्थना के पांच आवश्यक कदम हैं- नमन, स्मरण, कीर्तन, याचन और अर्पण। जब हम अपने आप को सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान एवं सर्वकृपालु को पूर्ण भक्ति से समर्पित कर अपने तुच्छ अहंकार को नष्ट करते हैं और तब परम शक्ति की ताकत हमारे माध्यम से बहने लगती है। तब हम वह प्राप्त कर सकते हैं जिसे अपनी शक्ति से प्राप्त करना कठिन या असंभव था। किसी ने कहा है-'ईश्वर प्रार्थनाओं का तीन रूपों में जवाब देता है-वह 'तथास्तु' कहता है और आपको आपकी इच्छित वस्तु देता है, वह आपको इन्कार करता है और आपको कुछ बेहतर देता है, वह आपको इंतजार करने के लिए कहता है और आपको ठीक समय पर सर्वश्रेष्ठ देता है।'

लोगों को 'धर्म' और 'ईश्वर' में विश्वास हो या न हो, वे इतना अवश्य अनुभव करते हैं कि कोई परम शक्ति है जो इस ब्रह्मांड में धड़क रही है। हम इस शक्ति से किसी भी तरीके से जुड़ें और इसका दर्शन करें जिससे शांति मिले, ईश्वरीय तत्व का अनुभव हो और प्रोत्साहन मिले। प्रार्थना केवल याचना का माध्यम नहीं है। जो कुछ हमारे पास है। उसमें नई शक्ति को ही लाभ की संज्ञा दी जा सकती है। कृतज्ञता प्रकट करने एवं प्रशंसा के भाव से प्रार्थना की जाती है। प्रार्थना हमारी परिस्थितियां बदलें या न बदले, हमें अवश्य बदल देगी। जीवन में विपरीत परिस्थितियां आना नियम है। यह प्रकृति की देन है। यदि दुख नहीं देखा गया तो सुख का मूल्य भी नहीं जानेंगे। जिसने गरीबी नहीं देखी वह धन का मूल्य नहीं समझता। धूप में नहीं चला वह छाया का महत्व क्या जाने? जीवन चुनौती है। विपरीत परिस्थिति हमें अवसर देती है। हम अपना विश्वास एवं आत्मबल जागृत करके उनसे लाभ उठाने का हरसंभव प्रयास करें। उसमें प्रार्थना एक सशक्त माध्यम होती है।

बेला गर्ग

भ्रष्टाचार के खिलाफ निर्णायक जंग

फिर से

आज हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यही है कि क्या इस देश में ईमानदारी स्थापित होगी? बेईमानी दूर होगी?

गत दिनों पुराने मित्र घर आए, ताज्जुब भी हुआ कि इतने दिनों बाद! कहने लगे कि फलां व्यक्ति पर मुझे तरस आता है। मैंने पूछा कि क्या हुआ? वे कहने लगे कि अभी दो दिन पहले उनसे बात हुई है, कह रहे थे कि इतना पैसा कमा लिया है कि इस पैसे को कहां रखें, समझ नहीं आता! सारे घर भर गए हैं, जगह नहीं है, लेकिन पैसा तो आ ही रहा है। उनके लिए पैसा समस्या बन चुका है, लेकिन स्रोत बंद नहीं किए जाते। जितना जनता से ले सको ले लो, जितना सरकार से बचा सको बचा लो, बस यही बात हर पैसे वाले के दिमाग में रहती है। पैसा काला होता रहता है, काले पैसे को छिपाने के लिए राजनीति का सहारा लिया जाता है। फिर उस पैसे को शादी समारोह में फूंकने की कोशिश की जाती है, लेकिन जनता से खींचना और सरकार से बचाना बंद नहीं होता। यह हमारे स्वभाव में आ जाता है। किसी दिन पाप की गठरी भर जाती है और फिर ऐसे लोग विजय माल्या बन जाते हैं। सुबह मित्र इस गंभीर समस्या को बता रहे थे और शाम को यह समस्या एक पूर्व वित्त मंत्री की गिरफ्तारी की खबर से और बड़ी होकर सामने आ गई।

शरीर में हम जब बहुत ज्यादा शर्करा एकत्र कर लेते हैं तब हम शक्कर से ही भागने लगते हैं, ऐसे ही पैसे का खेल है। अत्यधिक पैसा एकत्र करो और फिर पैसे से ही भागो! अपनी जान बचाने को भागो! पैसे से क्या खरीदना चाहते हो-सम्मान, प्रतिष्ठा, सत्ता? लेकिन ये क्या मिल पाते हैं? कुछ दिन भले ही मिल जाते हैं, लेकिन फिर सारा सम्मान, सारी प्रतिष्ठा और सारी सत्ता धूल में मिल जाती है। पैसा किसी काम नहीं आता। आज भ्रष्टाचारी भाग रहे हैं।

मुझे इतिहास को टटोलने का थोड़ा-सा शौक है, एक पुस्तक हाथ लगी, लेखक का नाम तो याद नहीं है, लेकिन था बड़ा नाम। वे लिखते हैं कि जब गांधी जी राजेंद्र बाबू से मिले तब राजेंद्र बाबू वकालत करते थे और उस समय उनकी एक पेशी की फीस दस हजार रुपये थी, लेकिन बाद में राजेंद्र बाबू ने सबकुछ त्याग दिया। सरदार पटेल की भी यही स्थिति थी, उन्होंने भी सबकुछ त्याग दिया। उस काल में न जाने कितने लोगों ने संपूर्ण समर्पण किया था। वह काल ईमानदारी को अपनाने का था, लेकिन आजादी के बाद बेईमानी को अपनाने का काल प्रारंभ हुआ। बेईमानी बिना जीवन की कल्पना ही नहीं हो सकती, यह सिद्धांत गढ़ लिया गया। हम सब बेईमानी से धन एकत्र करने में जुट गए। राजनीति तो मानो खदान थी, जितना चाहो धन निकाल लो और अपने खाते में डाल लो।

लेकिन हाल के दिनों में इसमें बदलाव देखने को मिल रहा है। बेईमानी की जगह ईमानदारी को स्थापित करने की फिर से कोशिश हो रही है। आज बेईमानी सरदर्द बन गई है, बेईमानी से कमाया पैसा संकट बन गया है। ऐसे लोग भाग रहे हैं। पैसे को कहां छिपाएं, स्थान खोज रहे हैं! अब ईमानदारी की रोटी की इज्जत होने की उम्मीद जगी है। बेईमानी की रोटी जहर बनती जा रही है। जिस दिन लोग पैसे और सुख में अंतर कर लेंगे उस दिन शायद देश सुखी हो जाएगा और फिर हम सुख के इंडेक्स में भी ऊपर आ जाएंगे।

(अजित गुप्ता का कोना ब्लॉग से साभार)

जैविक खेती ज्यादा लाभदायक

रासायनिक खेती कृषि की वह प्रक्रिया है, जिसमें फसल के समुचित विकास और ज्यादा उत्पादन के लिए रासायनिक खाद एवं रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। भारत में रासायनिक खेती की शुरुआत 1965 के करीब आई हरित क्रांति से हुई। किसानों के बीच इसका प्रचार-प्रसार जोर शोर से किया गया, किसानों ने रासायनिक खाद और कीटनाशकों का इस्तेमाल नियमित रूप से किया और इसका फायदा भी किसानों को मिला, परंतु इसके दूरगामी परिणाम मानव जीवन एवं पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। एक शोध से पता चला है कि इस्तेमाल में लाए गए रासायनिक खाद और कीटनाशकों का केवल 10 प्रतिशत हिस्सा ही पौधों द्वारा उपयोग में लाया जाता है, बाकी अलग-अलग माध्यमों से नदी, तालाब या झील में मिल कर जलीय जीवों को प्रभावित करता है। कीटनाशकों के रूप में इस्तेमाल होने वाले कई खतरनाक रसायन खाद्य पदार्थ के जरिये शरीर में पहुंच जाते हैं। इसका परिणाम कई बार बहुत घातक सिद्ध होता है। जैविक खेती कई दृष्टि से किसानों के लिए तथा पर्यावरण के लिए लाभदायक है। इसमें देसी खाद एवं कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इससे भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है। रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से कृषि लागत में कमी आती है। फसलों में उत्पादकता ज्यादा होती है। भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है। पर्यावरण की दृष्टि से भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है, मिट्टी, खाद पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है। हर दृष्टि से जैविक खेती उपयोगी है।

दीपक मिश्रा, दिल्ली विवि

मेलबाक्स

जीएसटी में जेटली की अहम भूमिका

'जीएसटी को साकार करने वाले अरुण जेटली' शीर्षक लेख में सुशील मोदी ने जीएसटी लागू कराने में अरुण जेटली के महत्व को सही दर्शाया है। आजादी के बाद देश का सबसे बड़ा कर सुधार जीएसटी देश के सभी राज्यों की आम सहमति से यदि लागू हो सका तो इसका श्रेय दिवंगत वित्त मंत्री अरुण जेटली को ही जाता है। उन्होंने उस समय गैर भाजपा शासित राज्यों में भी इस कर प्रणाली के प्रति भरोसा जगाया। जीएसटी लागू होने के उपरांत देश के व्यापार और उद्योग जगत को 17 प्रकार के कर और अनेक मासिक रिटर्नों से छुटकारा मिला। वर्षों से लंबित जीएसटी पर संप्रग सरकार न तो आम सहमति ही बना पाई और न ही इसे लागू करने का साहस दिखा पाई थी। मोदी सरकार द्वारा जीएसटी लागू किए जाने पर कांग्रेस ने इस बात के लिए दबाव बनाया कि जीएसटी एक्ट में कोई भी परिवर्तन संविधान संशोधन के जरिये ही हो, किंतु दूरदर्शी जेटली को मालूम था कि इस नई कर प्रणाली में देश के व्यापारियों की सहूलियत के लिए कुछ परिवर्तन आवश्यक होंगे। इसलिए वे इस एक्ट में संशोधन की व्यवस्था जीएसटी परिषद, जिसमें देश के सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व है, के जरिये होने की बात पर अडिग रहे। जीएसटी लागू होने के बाद आई समस्याओं के निराकरण के लिए परिषद ने कई संशोधन किए जिससे देश के व्यापारियों की समस्याएं समय पर दूर हुईं। हालांकि अभी भी जीएसटी में कुछ सुधार अपेक्षित हैं। उम्मीद है कि जीएसटी परिषद जल्द ही उन पर फैसला लेगा।

राजीव वार्ष्णेय, चंदौसी

अनावश्यक दखल

भारतीय संसद में जब जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 एवं 35ए को हटाने के लिए विधेयक प्रस्तुत किया गया तब से पाकिस्तान इस विषय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठाने के लिए प्रयत्नशील है। खबरों के मुताबिक पाकिस्तान की माली हालत बहुत खराब है। वह इसे सुधारने के बजाये दूसरे देश में अनावश्यक दखल देने की कोशिश कर रहा है। पाकिस्तान ने कश्मीर के बड़े भूभाग पर कब्जा कर रखा है। वह इसे छोड़ने के बजाय रोज धमकी दे रहा है। उसकी बदमिजाजी को दुनिया के देश देख रहे हैं।

dharmendranath.rastogi@gmail.com

बाढ़ की चुनौती

बाढ़ की विनाश लीला से लगभग आधे भारत में त्राहि-त्राहि मची हुई है। इससे भी अधिक चुनौती बाढ़ के पानी के उतर जाने के बाद बीमारी, ध्वस्त हुई निर्माण व मरे हुए जीव-जंतुओं के प्रकोप से निपटने की होगी। सरकार को उसके लिए तैयार रहना चाहिए।

देवदास सिंगल, फरीदाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।